जनसत्ता

नागरिकता का दायरा

असम में एनआरसी यानी राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर की प्रारंभिक सूची जारी किए जाने में जैसी जल्दबाजी दिखाई गई थी, उसे पूरा करने को लेकर उतनी गंभीरता नहीं दिख रही है। हालांकि पिछले साल जब यह सूची सामने आई थी, तो उसके साथ ही असम में चालीस लाख लोगों के इसके दायरे से बाहर हो जाने की खबर के बाद काफी उथल-पुथल मचने की आशंका स्वाभाविक ही थी। इसके बावजूद केंद्र सरकार ने इसके मुताबिक अपने कदम बढ़ाने के संकेत दिए थे। लेकिन उस दिशा में अब तक जितनी प्रगति हो सकी है, उससे साफ है कि इस मसले को समय पर निपटाने को लेकर सरकार बहुत गंभीर नहीं है। दूसरी ओर, नागरिकता रजिस्टर के मसौदे में कुछ खास लोगों के नाम शामिल करने पर आपत्ति करने वाले कई लोग इन शिकायतों पर विचार करने वाली समिति के सामने नहीं आ रहे थे। इसलिए इस काम में देरी हो रही है। लेकिन बुधवार को सुप्रीम कोर्ट ने साफ तौर पर कहा कि असम में एनआरसी को अंतिम रूप देने की समय सीमा इकतीस जुलाई से आगे नहीं बढ़ाई जाएगी। यानी अगर मौजूदा स्थिति में कोई बदलाव नहीं हुआ तो सरकार को आने वाले करीब ढाई महीने के भीतर इस काम को पूरा करना होगा।

नागरिकता से संबंधित मामला चूंकि बेहद संवेदनशील है और यह देश में रहने के अधिकार से जुड़ा है, इसलिए इसे लेकर जिस तरह की उथल-पुथल मची, वह स्वाभाविक है। यह एक सामान्य बात है कि बहुत सारे लोग अपनी नागरिकता से संबंधित दस्तावेजी सबूत तैयार करने और उसे संभाल कर रख पाने को लेकर अपेक्षित स्तर तक जागरूक नहीं रहे होंगे। इसलिए ऐसे लोगों के सामने एनआरसी से बाहर रह जाने के बाद मुश्किल होना लाजिमी है। इस व्यावहारिक समस्या को समझते हुए सरकार को इसका कोई हल निकालना चाहिए। शायद इसी पहलू को ध्यान में रख कर अदालत ने एक महीने पहले कहा था कि एनआरसी के मसौदे से बाहर रहने की वजह से दावा दाखिल करने वाले लोगों की 'असुविधाएं' न्यूनतम करने के लिए उचित कदम उठाए जाएं। यही वजह है कि एनआरसी संयोजक ने सूची से बाहर रह गए लोगों के नागरिकता संबंधी दावों का सत्यापन परिवार वंशावली और भूमि रिकॉर्ड के आधार पर किए जाने की बात कही थी। अब सरकार और एनआरसी को अंतिम रूप देने के काम में लगे संबंधित महकमों को यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि मामूली वजहों से किसी की नागरिकता और उसके अधिकारों का हनन न हो।

यह तय है कि एनआरसी की सूची सामने आने के बाद जिस तरह के विवाद उभरे थे, उनके मद्देनजर शिकायतों का निपटारा आसान काम नहीं होगा। हो सकता है कि इस प्रक्रिया में अतिरिक्त सुरक्षा बलों की जरूरत पड़े। इसी दलील पर गृह मंत्रालय ने बीती फरवरी में अदालत से यह अनुरोध किया था कि चूंकि लोकसभा चुनावों के दौरान सुरक्षा बलों की अनुपलब्धता होगी, इसलिए नागरिकता पंजी का काम फिलहाल स्थगित किया जाए। लेकिन उस समय भी अदालत ने केंद्र सरकार के रुख पर यह तल्ख टिप्पणी की थी कि केंद्र किसी न किसी तरह असम में एनआरसी का काम रुकवाना चाहता है। अदालत की टिप्पणी अपने आप में यह बताने के लिए काफी है कि इस मसले पर केंद्र सरकार का रवैया या तो ढीला-ढाला है या फिर वह किसी बहाने से इस काम को लंबा खींचना चाहती है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि चालीस लाख से ज्यादा लोगों के सामने नागरिकता का संकट खड़ा होने के क्या नतीजे हो सकते हैं। इसलिए एनआरसी से जुड़े मसले की संवेदनशीलता के मद्देनजर अंतिम सूची तैयार करते हुए विवाद की गुंजाइश को न्यूनतम करने की कोशिश होनी चाहिए।

दावेदारी और अवरोध

भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनाने के लिए फ्रांस ने पुरजोर तरीके से समर्थन किया है। भारत को फ्रांस का यह समर्थन इस लिहाज से महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए कि सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए भारत की दावेदारी का समर्थन तो तमाम देश करते रहे हैं, लेकिन उसे 'बेहद जरूरी' किसी ने नहीं बताया। हाल में संयुक्त राष्ट्र में फ्रांस के स्थायी प्रतिनिधि फ्रैंकॉइस डेलातरे ने कहा कि मौजूदा वैश्विक परिदृश्य में भारत को सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बनाना 'बेहद जरूरी' है। फ्रांस के इस समर्थन ने वैश्विक राजनीति में भारत के महत्त्व को तो रेखांकित किया ही है, साथ ही सुरक्षा परिषद के विस्तार की जरूरत भी साफ कर दी है। इससे यह भी पता चलता है कि अब दुनिया के विकसित राष्ट्रों में भारत की अहमियत को स्वीकार किया जा रहा है और सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य भी कहीं न कहीं यह महसूस कर रहे हैं कि परिषद का विस्तार कर भारत को स्थायी सदस्य बनाया जाना चाहिए। फ्रांस खुद सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य है और अब इस वैश्विक संस्था में सुधार के लिए आवाज उठा रहा है लेकिन कुछ राष्ट्र अपने हितों की वजह से इसे होने नहीं देना चाहते।

यों संयुक्त राष्ट्र में सुधार को लेकर लंबे समय से मांग चल रही है। दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद बनी इस वैश्विक संस्था की स्थापना के समय से ही इस पर महाबलियों का कब्जा रहा है। वीटो की शक्ति से संपन्न ये राष्ट्र आज भी जिस तरह दुनिया को हांक रहे हैं, वह हैरान करने वाला है। इससे कुल मिला कर स्थिति यह बनी हुई है कि ज्यादातर राष्ट्रों के लिए यह संस्था एक मुखौटे से ज्यादा साबित नहीं हो रही। अंतरराष्ट्रीय महत्त्व के मसलों पर जब भी कोई अंतिम निर्णय की बात आती है तो पांच देशों का ही मत उसमें काम करता है। इस वक्त अमेरिका, रूस, चीन, फ्रांस और ब्रिटेन सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य हैं। अगर किसी भी मामले में इनमें से एक भी सदस्य वीटो के अधिकार का उपयोग कर लेता है तो वह मसला निर्णायक बिंदु पर नहीं पहुंच पाता। जैसे जैश-ए-मोहम्मद के संस्थापक मौलाना मसूद अजहर पर पाबंदी लगाने का मामला सिर्फ चीन के वीटो की वजह से सिरे नहीं चढ़ पा रहा था। इसलिए अगर सुरक्षा परिषद का विस्तार होता है तो इसके फैसले ज्यादा तर्कसंगत हो सकेंगे। फ्रांस ने वक्त की नजाकत को भांपते हुए भारत के साथ ही जर्मनी, ब्राजील और जापान को भी स्थायी परिषद में जगह देने की वकालत की है। इसके अलावा, अफ्रीकी देशों में से भी सुरक्षा परिषद की नुमाइंदगी जरूरी समझी जा रही है। फ्रांस को आज यह बेहद जरूरी इसलिए भी लग रहा है कि वह अमेरिकी दबदबे के दूरगामी प्रभावों को समझ रहा है।

हालांकि सुरक्षा परिषद में किसी भी तरह का विस्तार बिना चार्टर में संशोधन किए नहीं हो सकता और चार्टर में संशोधन के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा में दो-तिहाई सदस्य देशों का समर्थन जरूरी है। इसके अलावा इस संशोधन को बाद में पांचों स्थायी सदस्य देशों के दो तिहाई सदस्य देशों की हरी झंडी भी चाहिए। लेकिन भारत के लिए यह आसान इसलिए नहीं है कि चीन इसका विरोध करेगा, यह किसी से छिपा नहीं है। स्थायी सदस्यता के मसले पर द्विपक्षीय वार्ताओं में तो रूस भारत की उम्मीदवारी का समर्थन करता है, लेकिन बहुपक्षीय स्तर पर विस्तार की प्रक्रिया का विरोध करता है। यह भारत के लिए बड़ा अवरोध है। ऐसे में भारत के लिए स्थायी सदस्यता की राह असान नहीं लगती।

कल्पमेधा

अपनी भूख सहने वाले तपस्वी की शक्ति उतनी
नहीं होती जितनी कि दूसरे की भूख
मिटाने वाले दानी की शक्ति।
– तिरुवल्लुवर

जल प्रबंधन की चुनौती

सुविज्ञा जैन

असमान बारिश और लचर जल प्रबंधन की वजह से भारत में साल दर साल अपनी जरूरत की तुलना में पानी कम पड़ने लगा है। आलम यह है कि इस समय भारत की साठ करोड़ आबादी पानी के मामले में अति-अभाव से लेकर गंभीर अभाव वाली स्थिति में बताई जाती है। हर साल करीब दो लाख लोग साफ पानी तक पहुंच न होने से काल के गाल में समा रहे हैं।

जल संकट हर साल गहराता जा रहा है। इस साल गर्मियां आते ही महाराष्ट्र और गुजरात से खबरें आने लगीं कि वहां के बांधों में जमा पानी काफी कम बचा है। यानी बारिश आने में बचे पांच हफ्तों में जल संकट का अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। हालांकि केंद्रीय जल आयोग हर हफ्ते बिना नागा देश के बांधों में बचे पानी का हिसाब बताता है। अब यह अलग बात है कि देश में बने पांच हजार बांध हमारी जरूरत जितना पानी रोक कर नहीं रख पाते। बढ़ती जरूरत के मुताबिक देश में जल भंडारण की क्षमता बढ़ नहीं पाई है। दरअसल, अरब घन मीटर की इकाई में पानी के आंकड़े सुनने में बहुत बड़े लगते हैं। लेकिन जल प्रबंधकों को इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि देश में रोजाना पानी की मांग तेज रफ्तार से बढ़ रही है। अगर बढ़ती जरूरतों का हिसाब लगा कर नहीं रखा गया तो किसी भी वक्त बड़े जल संकट की खबर सुनने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

हमें यह भी जान लेना चाहिए कि केंद्रीय जल आयोग के हफ्तेवार आंकड़े हैं किस काम के? हर हफ्ते देश के बांधों में बचे पानी की मात्रा से हमें जानकारी क्या मिलती है? जल आयोग की दी नवीनतम जानकारी यह है कि देश के बांधों में मई के पहले हफ्ते में लगभग उतना पानी जमा है जितना पिछले साल था। साथ ही यह भी बताया गया है कि पिछले दस साल में बांधों में जितना पानी औसतन रहता आया है उतना पानी इस साल भी है। लेकिन महाराष्ट्र और गुजरात अपवाद हैं। वहां के जल संकट की गंभीरता इसलिए छुप गई कि इनक्यानवे बांधों में जल भंडारण के आंकड़ों को जोड़ कर और फिर भाग देकर जो आंकड़ा बना वह हालात को सामान्य बताता है। यह भी गौरतलब है कि यह आंकड़ा देश के सिर्फ इनक्यानवे बांधों की निगरानी से ही निकाला जाता है, जिनकी कुल भंडारण क्षमता सिर्फ एक सौ बासठ अरब घनमीटर है। जबकि देश में कुल बांधों की संख्या पांच हजार के लगभग है। हालांकि तब भी सबकी भंडारण क्षमता मिला कर भी दो सौ सत्तावन अरब घनमीटर ही है।

इनक्यानवे प्रमुख बांधों को देश के पांच क्षेत्रों में बांटा जाता है। नई रिपोर्ट के मुताबिक चिंता पश्चिमी क्षेत्र के सत्ताईस बांधों में जल स्तर को लेकर है। इसी क्षेत्र में महाराष्ट्र और गुजरात आते हैं। इस क्षेत्र के बांधों की कुल क्षमता 31.26 अरब घनमीटर है। जबकि दो मई के बुलेटिन के मुताबिक इस समय उपलब्ध जल भंडारण सिर्फ 5.22 अरब घनमीटर है। बचे पानी का आंकड़ा वहां के बांधों की कुल क्षमता का सत्रह फीसद है, जबकि पिछले साल इसी हफ्ते में यह तेईस फीसद था। अगर दस साल का औसत देखें तो इन बांधों में इस समय तक औसतन छब्बीस फीसद पानी बचा रहता था। जल प्रबंधक यह अच्छी तरह समझते हैं कि जहां इन दिनों औसतन छब्बीस फीसद पानी रहता हो, वहां इस साल उन्हीं दिनों अगर यह स्तर सिर्फ सत्रह फीसद हो तो आने वाले हफ्तों में इस क्षेत्र में क्या हालत बन सकती है।

मसला सिर्फ महाराष्ट्र और गुजरात का नहीं माना जाना चाहिए। यह तथ्य कम चिंताजनक नहीं है कि पिछले कई साल से हमारी जल भंडारण क्षमता कमोबेश जस की तस है। पिछले एक दशक से यह क्षमता दो सौ पचास अरब घनमीटर के आसपास ही बनी हुई है, जबकि इस दौरान आबादी चौदह से पंद्रह करोड़ बढ़ गई। गौरतलब है कि प्रतिव्यक्ति प्रतिवर्ष पानी की जरूरत का आंकड़ा दो हजार घनमीटर है। यानी बढ़ती आबादी के हिसाब से कल कारखाने, बिजलीघर चलाने और अनाज उगाने के लिए पानी की जरूरत बढ़ती गई। यानी केंद्रीय जल आयोग के ये आंकड़े अगर यह कहते हों कि देश के बांधों में उपलब्ध पानी सामान्य मात्रा में है तो यह बात कच्ची और अधूरी क्यों नहीं समझी जानी चाहिए।

अब जब यह अंदेशा खड़ा हो गया है कि अल नीनो प्रभाव के कारण इस साल पानी कम गिरने का अंदेशा है तो संकट की नई घंटी बजती दिख रही है। इतना ही नहीं, इस साल पृथ्वी दिवस पर जताई गई जलवायु परिवर्तन की चिंता खतरे की दूसरी घंटी है। इसीलिए बढ़ते वैश्विक तापमान को पानी की उपलब्धता के नजरिए से भी देखने की जरूरत है। शोध अध्ययनों में निकल कर आ रहा है कि

आश्चर्यजनक रूप से पृथ्वी लगातार गर्म हो रही है। सन 1880 से लेकर 2003 तक के आंकड़ों से पता चला था कि पृथ्वी औसतन हर दस साल में 0.05 डिग्री सेल्सियस यानी एक डिग्री सेल्सियस के बीसवें हिस्से की रफ्तार से गर्म हुई। लेकिन सिर्फ 1975 से लेकर 2003 तक के अंतराल में पृथ्वी के गरम होने की रफ्तार प्रति दस साल 0.22 डिग्री सेल्सियस हो गई। पहले की तुलना में यह रफ्तार साढ़े चार गुनी बढ़ गई। इस लिहाज से पचास साल में पृथ्वी का औसत तापमान 0.9 डिग्री सेल्सियस बढ़ चुका है। पर्यावरण विज्ञानियों के मुताबिक यह एक ऐसा बदलाव है जो जीव जगत के लिए खतरे की घंटी तो है ही, उसके साथ-साथ जलचक्र में बदलाव की चेतावनी भी है।

जलवायु संकट से वर्षा चक्र गड़बड़ा रहा है। वर्षा अवधि पर असर पड़ रहा है। अलग-अलग क्षेत्रों में वर्षा की असमानता बढ़ती जा रही है। जब तापमान बढ़ता है तो ज्यादा पानी भाप बन कर उड़ता है। समुद्री इलाके में अचानक दाब परिवर्तन होने से चक्रवात और तूफान पैदा होते हैं। तूफानों से कई इलाकों में अचानक ज्यादा पानी बरस जाता है जिससे बाढ़ और दूसरी तबाहियां झेलनी पड़ती हैं। जहां कम बारिश होती है उन क्षेत्रों को सूखे और पानी की किल्लत से जूझना पड़ता है।

वैसे तो आजकल आपूर्ति के मामले में पूरे विश्व में जल संकट है, लेकिन भारत के लिए यह मुश्किल ज्यादा बड़ी है। असमान बारिश और लचर जल प्रबंधन की वजह से भारत में साल दर साल अपनी जरूरत की तुलना में पानी कम पड़ने लगा है। आलम यह है कि इस समय भारत की साठ करोड़ आबादी पानी के मामले में अति-अभाव से लेकर गंभीर अभाव वाली स्थिति में बताई जाती है। हर साल करीब दो लाख लोग साफ पानी तक पहुंच न होने से काल के गाल में समा रहे हैं।

कोई कह सकता है कि पानी के संकट को इस तरह से देखना या दिखाना अतिरंजित है। बेशक अभी हमें पानी की कमी से एकमुश्त हादसे की उतनी बुरी खबरें मिल नहीं रही हैं। दरअसल, यह हालत उतनी भयावह इसलिए नहीं दिख रही है कि हमने भूजल पर निर्भरता ज्यादा बढ़ा ली है। यह खतरे की तीसरी घंटी है। कई शोध बताते हैं कि इस समय हर साल बड़ी तेज़ी से भूजल का स्तर नीचे गिर रहा है। सनद रहे कि भूजल असीमित नहीं है। नीति आयोग की 'वाटर कंपोजिट इंडेक्स' रिपोर्ट के मुताबिक भी भूजल खत्म हो रहा है। दूसरे देशों से अपनी तुलना करें तो दुनियाभर में जमीन से उलीचे जा रहे कुल भूजल का एक चौथाई हिस्सा सिर्फ भारत में निकाला जा रहा है। जबकि पूरी दुनिया को बारिश से जितना पानी मिलता है उसका सिर्फ चार फीसद हमारे हिस्से में आता है। सरकारी सर्वेक्षणों के मुताबिक सन 2020 तक 21 महानगरों में भूजल खत्म हो जाएगा। जल संकट सीधे जनता से जुड़ा मुद्दा है। देश के हाल फिलहाल के राजनीतिक माहौल में जल संचयन की क्षमता बढ़ाने, बांधों की मरम्मत, जलाशयों की गाद निकालने, भूजल संरक्षण जैसे गंभीर मुद्दे कम से कम चुनावी मुद्दों की सूची में तो आ ही जाने चाहिए थे। हम उस दौर में हैं जब जल संकट पर गंभीरता से सोचने का यह आखिरी मौका है।

प्रबुद्ध भारत की ओर

शचींद्र आर्य

दुनिया मेरे आगे

आज के समय में एक मौलिक सवाल यह है कि कोई भी देश कैसे बनता है! इसका मुझे एक जवाब सूझ रहा है और वह है- मेहनत से। कोई अन्य कारक अगर हो सकते हैं तो वे शर्तिया इसके बाद होंगे। हम खुद में ऐसे समाजों का संकुल हैं जो विभेदीकरण करके टिका हुआ है। जाति वह विभेद हममें उत्पन्न करती है। यह सिर्फ श्रम का विभाजन नहीं करती, बल्कि सामाजिक रूप से एक बहुत ही जटिल पदानुक्रम बनाती है, जिसे तोड़ा जाना सतह पर लगभग असंभव लगता है। जाति ने निर्धारित किया है कि कौन-कौन सी जातियां श्रम करेंगी और उनके श्रम पर कौन-सी जातियां सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पूंजी का निर्माण करेंगी। हम अपने चारों तरफ नजर घुमा कर देख सकते हैं कि जिनकी मेहनत पर भारत में पूंजीवाद फला-फूला और जिसने अपनी जड़ें मजबूत कीं, उनका शोषण और दमन अभी तक तक जारी है। यह कैसी विसंगति है कि जो श्रम कर रहा है, वह गंभीर बीमारियों से ग्रस्त है, उसके पास जीवनयापन की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के साधन भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। दूसरी तरफ, वह जिस पूंजीपति के लिए अपना श्रम बेच रहा है, वह पूंजीपति इस देश की तीन-चौथाई से भी ज्यादा पूंजी को हथिया कर बैठा हुआ है। जिसे हम अमीरी और गरीबी की सरल विभाजक रेखा के भीतर विसंगतियां के रूप में पनपता हुआ देख रहे हैं, वह सामूहिक रूप से हमारी समझ से भी बहुत दूर है।

मैं यहां इस शोषण, पीड़ा और संघर्ष की कई शताब्दियों को याद रखते हुए उस मांग की तरफ आना चाहता हूं, जिसके लिए यह एकदम सही वक्त है। न्याय पर आधारित समाज की कल्पना करने और उसके लिए संघर्ष करने वाले सभी लोगों को निजी क्षेत्र में आरक्षण की मांग को मुख्यधारा का प्रश्न बनाने के लिए अपने प्रयास तेज करने होंगे। यह किसी से छिपा नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्र के ढांचे को कमजोर करने में खुद सरकारें किस तरह की भूमिका निभा रही हैं। जब तक यह सार्वजनिक चर्चा में शामिल नहीं होगा, इसके लिए जनमत बनाना मुश्किल बना रहेगा। इसके लिए सबको मिल कर प्रयास करने होंगे और सबसे पहले इसकी सैद्धांतिकी को तैयार करना होगा।

सबसे पहले हमें यह समझना चाहिए कि यह कोई भावुकता में उठाई गई मांग नहीं है। इसका सिर्फ एक अर्थ है। अगर कोई घराना भारतीय संसाधनों के बलबूते पर, जिनमें श्रम भी शामिल है, धनाढ्य और पूंजीपति बना है, तब उसकी पूंजी पर बतौर नागरिक आम जनता का भी उतना ही हक है। बेशक यह मांग उठने के साथ ही अगले पल इसे मान नहीं लिया जाएगा। जिन विशेषाधिकारों का वे पीढ़ी दर पीढ़ी उपभोग करते आए हैं, अचानक उन्हें कैसे छोड़ देंगे। इसलिए इस मसले पर होने वाली शुरुआत बहुत मुश्किल साबित होने वाली है। जो शोषक है, उसे यह समझा पाना बहुत मुश्किल होता है कि उसके लिए जो सुविधाएं बन कर आई हैं, उस पूरी प्रक्रिया में कौन-कौन किस रूप में शामिल था। जरूरी नहीं कि उन शामिल होने वालों की इसमें सहमति या मर्जी रही ही हो। दोनों ही स्थितियों में वह शोषण ही है। उसे कभी इतना मेहनताना नहीं मिलेगा कि उसकी सारी जरूरतें पूरी हो पाएं। वह ऐसे ही कुचक्र में अपनी जिंदगी गुजार देता है, जिसकी आहट भी उनके कानों तक नहीं पहुंचती है।

आप सामाजिक उत्तरदायित्व के नाम पर यह नहीं कर सकते कि सालों तक तंबाकू के उत्पादों का कारोबार करते रहें और एक दिन आपने उसके उपयोग से रोगी हुए लोगों के लिए कैंसर या टीबी के अस्पताल खोल दिए। हमें यह भी समझना होगा, जो बड़े-बड़े पूंजीपति अपनी सालाना आय को दान कर-के दुनिया के बड़े-बड़े लोकोपकारक, जनहितैषी, समाज सेवी, फिलेंथ्रेपिस्ट बनने की चाहत रखते हैं, उस पर सबसे पहला हक देश की आम जनता का ही है। इससे उनके द्वारा किया गया शोषण कम या खत्म नहीं हो जाएगा, न हम उनके शोषण और दमनकारी नीतियों के साझेदार हो जाएंगे। हम सिर्फ इस प्रक्रिया को पलटना चाहते हैं। जब राज्य खुद उनके लिए जमीन बनाने में व्यस्त हो और राजनीतिक समझौते करने में व्यस्त हों, तब हमें आगे आकर उसके 'दोस्ताना पूंजीवाद' से टक्कर लेनी होगी।

ऐसा भी नहीं है कि सैद्धांतिकी एक दिन में बन कर तैयार होने वाली चीज है। रास्ता बहुत लंबा और थकाऊ है। बीच में ही हम कहीं थक कर बैठ न जाएं इसके लिए एक नक्शा बना लेना चाहिए। इसके लिए जिन तर्कों, तथ्यों और कौशल की जरूरत है, हमें उन तक पहुंचना होगा। मेरी नजर में यह रास्ता आंबेडकर से होकर जाता है। जब तक हम शिक्षित नहीं होंगे, तब तक संगठित नहीं हो सकते और संगठित हुए बिना कोई भी संघर्ष हमें सफलता नहीं दिला सकता।

गोवंश और सियासत

उत्तर प्रदेश की चुनावी रैलियों में बयानों और दावों-वादों के बीच सांड को लेकर भी सियासत होने लगी है। प्रदेश सरकार सांडों को लेकर परेशान हो रही है, तो सपा-बसपा गठबंधन पशुधन को मुद्दा बनाने में जुट गया है। सपा नेता अखिलेश यादव ने समर्थकों की भीड़ को गिराते हुए एक सांड का वीडियो ट्वीट किया। साथ में लिखा- 'ये सांड पशुओं और किसानों की ओर से ज्ञापन लिए घूम रहा है। बेचारा गलत जगह आ गया। जाना था तिरवा, पहुंच गया छिबरामऊ।'

इससे पहले कन्नौज में सपा-बसपा गठबंधन की रैली के हेलीपैड पर सांड चला आया था। सपा प्रमुख का हेलीकॉप्टर पंद्रह मिनट हवा में अटका रहा। उन्होंने ट्वीट भी किया- 'पिछले 2 सालों में जनता 5 करोड़ आवारा पशुओं से परेशान हो गई। अगर सरकार राजनीतिक कार्यक्रमों में सांड को घुसने से नहीं रोक पा रही है, तो गरीब किसानों का क्या हाल होगा।' अगले दिन एक और ट्वीट किया- 'जब सांड को बताया कि ये उनको बेघर करने वालों की रैली नहीं है, तब जाकर वो शांत हुआ।' वहीं बसपा प्रमुख सांड का जिक्र अपने भाषणों में कर रही हैं। उरई में उन्होंने राज्य सरकार पर सांड के सहारे उनकी रैलियों को रोकने का आरोप लगाया। जालौन में भी बसपा प्रमुख ने कहा कि भाजपा हमें प्रचार से रोकने में लगी है। कन्नौज में हेलीपैड पर सांड को छोड़ा गया और हरदोई में भी ऐसा ही किया गया।

प्रदेश सरकार के लिए अखिलेश-मायावती की रैलियों में घुसे सांडों ने चेतावनी का काम किया। एक सांड मुख्यमंत्री के हेलीपैड पर भी चला आया था। इससे सीख लेकर उत्तर प्रदेश में हुई प्रधानमंत्री की तीन रैलियों से पहले रात भर इलाके में आवारा पशुओं की धरपकड़ की गई। सांड और छुट्टा गायों को पकड़ कर गोशालाओं या दूसरी जगहों पर रखा गया। सीतापुर के सिटी मजिस्ट्रेट ने बताया कि रैली में कोई चूक न हो इसलिए छुट्टा पशुओं को पकड़ा गया। उत्तर प्रदेश पशुपालन विभाग का दावा है कि राज्य में 11 लाख आवारा गोवंश हैं। आखिरी पशुगणना 2012 में हुई थी। वहीं, गांव वालों का मानना है कि हर ग्राम पंचायत में करीब 100 आवारा जानवर होंगे। राज्य में 59 हजार से ज्यादा ग्राम पंचायतें हैं। गोवंश कल्याण के लिए प्रदेश सरकार ने 2019-20 के बजट में 612.6 करोड़ रुपए का प्रावधान किया था। इसके बावजूद गोवंश का आवारा भटकना सरकार की गोवंश और पशुधन संबंधी नीति पर सवालिया निशान लगाता है।

● *रितेश कुमार उपाध्याय, संत कबीर नगर*

कब तक

हमारे देश की जनता को राजनीति में वंशवाद से कोई परहेज नहीं है, अगर ये वंशवादी जनता की आकांक्षाओं पर खरे उतरते हैं तो। अगर वे अपने दादा-नाना या माता-पिता की सियासी पुण्याई को भुनाते रहते हैं और विकास या जन कल्याण के काम नहीं करते हैं तो जनता का उनसे मुंह चुराना लाजिमी है। आखिर कब तक वे पुरखों के कार्यों को भुनाते रहेंगे? काम तो करना होगा और जन आकांक्षाओं पर खरा भी उतरना ही होगा। यह बात वंशवादी राजनीतिकों को जितनी जल्दी समझ में आ जाए उनके हित में ही अच्छा होगा।

● *हेमा हरि उपाध्याय, खाचरोद, उज्जैन*

गांधी की याद

जगमोहन सिंह राजपूत का लेख 'व्यक्तित्व परिवर्तन का मार्ग' (7 मई) बताता है कि कैसे हम गांधी और उनकी विचारधारा को भूलते जा रहे हैं। गांधी सहनशील थे, अहिंसा के पुजारी थे यह सब हमारी पीढ़ी को कौन बताएगा? आखिर कौन बताएगा कि जो अंग्रेज गोलियों से नहीं हारे वे एक दुबले-पतले इंसान के मजबूत इरादों से हार गए। लेखक ने सही कहा कि गांधी के एक आह्वान पर देश रुक जाता था, या चल पड़ता था!

आज के नेताओं की रैली में तो उन्हीं के खिलाफ नारे लगते हैं। ऐसा इसलिए कि ये लोग नेता बने नहीं, बनाए गए हैं। टेक्नोलॉजी के बदलते दौर में हम सिर्फ यह जानते हैं कि लड़ाइयां गोला-बारूदों से लड़ी जाती हैं, मगर भूल जाते हैं कि गांधी, लिंकन और मंडेला जैसे लोगों ने अपने मजबूत इरादों से दुनिया की बड़ी कही जाने वाली लड़ाइयों को जीता है। आज के नेताओं को गांधी अप्रासंगिक लगते हैं। हम अहिंसा और सहनशीलता को पीछे छोड़ उग्र कर होते जा रहे हैं और यह भविष्य के लिए खतरनाक है। इसलिए हमें अपने बच्चों को महात्मा गांधी, अब्राहम लिंकन आदि महान लोगों की कहानियां बतानी ही चाहिए।

● *संजय दुबे, नई दिल्ली*

आत्मनिरीक्षण जरूरी

चुनाव प्रचार के दौरान दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल को फिर थप्पड़ मारा गया। यह घटना अत्यंत निंदनीय है लेकिन विचार करने की आवश्यकता है कि बार-बार केजरीवाल पर ही ऐसे हमले क्यों होते रहे हैं! हालांकि हमला करने वाला 'आप' का ही सदस्य और प्रशंसक बताया गया, पर वह सेना पर केजरीवाल द्वारा दिए गए बयानों के कारण उनसे खिन्न था। वह केजरीवाल और 'आप' नेताओं द्वारा प्रधानमंत्री के बारे में दिए गए बयानों से भी कथित रूप से नाराज बताया गया। आम आदमी पाटी और इसके सर्वेसर्वा को आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता है कि सेना पर संदेह जताने और प्रधानमंत्री पर अनर्गल व बिना सबूत आरोप लगाने से न केवल आम जनता में रोष है बल्कि उनकी ही पार्टी के सदस्यों और समर्थकों में भी असंतोष व्याप्त है।

आरोप तब तो सही हैं जब आपके पास सबूत हों अन्यथा जनता को बेवकूफ नहीं समझना चाहिए। केजरीवाल बिना सबूत आरोप लगाने के लिए वैसे ही बदनाम रहे हैं। याद कीजिए, वे कॉमनवेल्थ खेल घोटालों में शीला दीक्षित के खिलाफ पंद्रह सौ पेज का आरोपपत्र अपनी जेब में पड़ा होने की बात कहते थे, लेकिन जब सत्ता में आए तो याद दिलाने वाले व्यक्ति से ही शीलाजी के विरुद्ध सबूत पेश करने को कहने लगे ताकि उनके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई कर सकें।

झूठ बोल कर सत्ता हथियाना बार-बार न हो सकेगा। कुछ रचनात्मक और धरातल पर उतरने वाले कार्य कीजिए। हर वक्त मोदी विरोध करते रहने से न केवल मोदी और लोकप्रिय हो जाएंगे बल्कि आपकी प्रचंड बहुमत की सरकार भी धीरे-धीरे अल्पमत में आ जाएगी। अब भी समय है, खांड को पानी बन कर बहने से बचाया जा सकता है।

● *सतप्रकाश सनोठिया, रोहिणी, नई दिल्ली*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com